(समयसार १९०-१९२ गाथा)। **पहले तो जीव के,..** पहली गाथा में ऐसा आ गया कि राग-द्वेष और मोह, वह शुभाशुभभाव का मूल है। ऐसा पहले आ गया। पहली गाथा (आ गयी है)। इसलिए उनसे एकत्व छोड़कर स्वरूप में स्थिर होना। यहाँ कहते हैं कि **पहले तो जीव के,..** क्रम पूछते हैं न? संवर का क्रम कैसे होगा? धर्म का क्रम किस प्रकार होगा? पहले क्या होगा? और फिर क्या होगा?

जीव के, आत्मा और कर्म के एकत्व का अध्यास.. आत्मा और कर्म, रागादि से एकत्व का अध्यास **(अभिप्राय) जिनका मूल है..** पहले में ऐसा कहा था कि राग-द्वेष-मोह जिसका मूल है, ऐसे शुभाशुभभाव, उनका भेदज्ञान द्वारा अभाव करना। यहाँ कहा कि **आत्मा और कर्म के एकत्व का अध्यास..** रागादि परिणाम और स्वभाव दोनों एक हैं, ऐसा जो अध्यवसाय है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति

के परिणाम हों, परन्तु वे परिणाम राग हैं और उनके साथ एकत्वबुद्धि-अध्यवसाय, वह मिथ्यात्व है।

एकत्व का अध्यास (अभिप्राय) जिनका मूल है.. जिसका अर्थात् ? **मिथ्यात्व-अज्ञान-अविरति-योगस्वरूप अध्यवसान..** मिथ्यात्व से एकत्वबुद्धि, अविरति, प्रमाद, कषाय से एकत्वबुद्धि। आहाहा! क्रम कहा, क्रम। क्रम पूछा है न ? संवर किस क्रम से होता है ? सूक्ष्म बात है, भाई! पहले बाह्य त्याग करे, निवृत्ति ले तो होता है, ऐसा नहीं लिया, परन्तु प्रथम आत्मा और कर्म, जो परवस्तु है, उसके साथ एकत्वबुद्धि का अभिप्राय जिसका मूल है। वह अध्यवसाय जिसका मूल है। **ऐसे मिथ्यात्व-अज्ञान-अविरति-योगस्वरूप अध्यवसान विद्यमान हैं,..** आहाहा! आत्मा और कर्म दोनों की एकताबुद्धि, ऐसा जो मूल भाव, उस मूल में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग, यह एकत्वबुद्धि है, उनमें एकत्वबुद्धि होती है। आहाहा! कर्म के एकपने के अध्यास से जिसे मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय के साथ एकत्वबुद्धि होती है। मिथ्यात्व के कारण (होती है), कर्म के कारण नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

वे रागद्वेषमोहस्वरूप आस्रवभाव के कारण हैं;.. कर्म और आत्मा को अर्थात् दूसरी चीज़ के साथ, राग के साथ एकत्वबुद्धि, वह कर्म के साथ एकत्वबुद्धि है, उस एकत्वबुद्धि के कारण—अभिप्राय से जिसके राग-द्वेष और मोह, वे आस्रव भाव के कारण हैं। आहाहा! यह **अध्यवसान विद्यमान हैं,..** वे ही आस्रव के कारण हैं। आस्रवभाव कर्म का कारण है। निमित्त डालते हैं। आस्रवभाव जो है, वह कर्म का कारण है। उससे कर्म बँधता है। सूक्ष्म है, सूक्ष्म।

जिसे स्व-आत्मा और पर-रागादि, पर-दो का जिसे एकत्व का अध्यवसाय है, वह जिसका मूल है, उसमें से मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग प्रवर्तते हैं। समझ में आया ? और उससे वे **आस्रवभाव कर्म का कारण है;..** ये राग-द्वेष-मोह आस्रव नवीन आवरण का कारण है। आहाहा! इसमें योग भी लिया है। शुभाशुभयोग। है न ? मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, योग। ये अध्यवसाय एकत्वबुद्धि विद्यमान है। **वे रागद्वेषमोहस्वरूप आस्रवभाव के कारण हैं;..** इनसे उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष उत्पन्न होता है। बहुत सूक्ष्म। बाह्य में यात्रा करो, भक्ति करो, (इसलिए) धर्म हो जाए, ऐसा माने। ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : पालीताणा की यात्रा करे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : पालीताणा क्या, सम्मेदशिखर की लाख बार यात्रा करे न! वह शुभराग है और उससे लाभ होता है, यह मान्यता मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : यात्रा तो आपने भी की थी?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शुभभाव होवे तो आता है परन्तु है हेय। तीन बार हिन्दुस्तान में घूमे हैं। बहुत यात्राएँ की हैं। वह तो शुभभाव है। हेय है परन्तु आये बिना रहता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो दोनों में अन्तर क्या किया? पहले में ऐसा कहा था कि राग-द्वेष-मोह जिसका मूल है, ऐसे जो योग। ऐसा कहा था। वह योग है, वह आस्रव है और उसके कारण बन्धन है और उसके कारण संसार है। यहाँ कहते हैं, राग-द्वेष और मोह, वे आस्रवभाव के कारण क्यों उत्पन्न हुए? कि आत्मा और कर्म के एकपने के अध्यवसाय से। मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, योगस्वरूप अध्यवसान उत्पन्न हुए। आहाहा! शुभभाव आवे, महाव्रत के परिणाम भी मुनि को आवें, परन्तु है हेय। बन्ध का कारण है। धर्म नहीं और धर्म का कारण भी नहीं। बन्ध है और बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो महाविदेह की यात्रा गये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : गये थे। यह तो कहा, शुभभाव होवे तो जाए। शुभभाव आवे तो जाते हैं। भगवान के पास भगवान की वाणी सुनी। आठ दिन रहे। उस परद्रव्य की ओर का जितना लक्ष्य है, उतना शुभराग है। आहाहा! स्वद्रव्य का अन्तर में जितना आश्रय ले, उतना धर्म होता है। २ और २ = ४ जैसी बात है। जितना आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य का अवलम्बन (ले, उतना अधर्म है।) स्त्री, कुटुम्ब, परिवार का अवलम्बन तो अशुभभाव है। देव-गुरु-शास्त्र, मन्दिर का अवलम्बन तो शुभभाव है। दोनों बन्ध के कारण हैं। आहाहा! अशुभ से बचने को शुभभाव आता है। अशुभ वंचनार्थम्-है तो बन्ध। आहाहा!

आस्रवभाव, कर्म का कारण है;.. लो! जो कुछ आस्रवभाव है, वह नये कर्म का कारण है। आहाहा! **कर्म, नोकर्म का कारण है;..** कर्म है, वह शरीर प्राप्त हो, उसका कारण है। आहाहा! क्रम रखा क्रम। आहाहा! यह तो भाई! शान्ति से धीरज से विचार करे

और मनन करे, तब समझ में आये ऐसी बात है। आहाहा! यह तो अध्यात्म भाषा है, दिगम्बर सन्तों की गहराई की (बातें हैं)। आहाहा!

राग-द्वेष और मोह जिसका मूल है, ऐसे शुभाशुभयोग—ऐसा कहा था। आहाहा! और उस शुभाशुभयोग की एकत्वबुद्धि मिथ्यात्व है। आहाहा! यहाँ यही कहा, दूसरे प्रकार से कहा कि **आत्मा और कर्म के एकत्व के अध्यास..** शुभाशुभभाव का मूल राग-द्वेष-मोह है, उसमें एकत्वबुद्धि थी। आहाहा! धीर का काम है। वीतराग का धर्म अलौकिक है। आहाहा! लोग तो बाहर से मान बैठे, इसलिए यह लोगों को रुचता नहीं। लाख, दो लाख खर्च करे, यात्रा निकाले, रथ-गजरथ निकाले, लाखों लोग इकट्ठे हों, इसलिए मानो धर्म हो गया। उसमें धर्म नहीं है, इस प्रकार से धर्म नहीं है।

यहाँ तो कर्म रोके, वह आस्रवभाव के कारण को रोके तो कर्म का कारण है तो कर्म नहीं होगा। आस्रवभाव सेवन करता है तो वह कर्म का कारण है। आस्रवभाव सेवन करता है, उसे न सेवन करे तो उसे कर्म बन्धन नहीं होता, ऐसा कहा है। शुभ-अशुभभाव दोनों आस्रव के कारण हैं और वे कर्म के कारण हैं। उनसे कर्म बँधते हैं। है या नहीं इसमें? आहाहा!

कर्म, नोकर्म का कारण है;.. कर्म है, वह शरीर का कारण है। कर्म से शरीर मिलेगा। **नोकर्म, संसार का कारण है।** शरीर, वह संसार का कारण है। देखा? निमित्त-निमित्त सम्बन्ध लिया। नहीं तो संसार का मूलकारण मिथ्यात्व है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कर्म में उसे उठाकर निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बताना है। नोकर्म अर्थात् शरीर, संसार का कारण है। **इसलिए-सदा ही यह आत्मा, आत्मा और कर्म के एकत्व के अध्यास से..** देखा? **आत्मा और कर्म के एकत्व के अध्यास से मिथ्यात्व-अज्ञान-अविरति-योगमय आत्मा को मानता है..** देखा? आहाहा! मिथ्यात्व को, अज्ञान को, अविरति को और कषाय को, शुभादि योग को एकत्वपने के अभ्यास से आत्मा के मानता है। आहाहा! वह आत्मा नहीं है, शुभयोग आत्मा नहीं है, तथापि वे आत्मा के हैं—ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

आस्रवभाव, कर्म का कारण; कर्म, नोकर्म का कारण। देखो! यहाँ एक-दूसरे के निमित्त कारण दिये, हों! निमित्त कारण! **और नोकर्म, संसार का कारण है।** शरीर है,

ये पाँच इन्द्रिय के विषय सेवन करेगा और इसके कारण संसार है। आहाहा! **इसलिए- सदा ही यह आत्मा, आत्मा और कर्म के एकत्व के अध्यास से..** आत्मा और कर्म के एक (पने की) बुद्धि के अध्यवसाय से। **मिथ्यात्व-अज्ञान-अविरति-योगमय आत्मा को मानता है..** अनादि से स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसे यह नहीं जानता। आत्मा तो ज्ञातादृष्टा आनन्दकन्द प्रभु है। अकेला ज्ञानघन है। उसे यह नहीं मानता; इसलिए अनादि से यह योगमय आदि को अपना मानता है। स्वरूप को नहीं मानता, इसलिए मिथ्याभ्रम उत्पन्न होता है, उसे आत्मा मानता है। कषाय का भाव शुभ हो, अशुभ हो, वह आत्मा में है, इसलिए आत्मा के हैं—ऐसा मानता है। आहाहा! आत्मा में परिणाम उत्पन्न होते हैं न? इसलिए आत्मा के हैं—ऐसा मानता है। यह मिथ्यात्व है। आहाहा!

(अर्थात् मिथ्यात्वादि अध्यवसान करता है);.. एकत्वबुद्धि से, आत्मा और कर्मों के एकत्वपने से। **इसलिए रागद्वेषमोहरूप आस्रवभाव को भाता है,..** आहाहा! जिसे अपना माने, उसकी भावना किया करे। आहाहा! ये रागादि शुभ हो, उन्हें अपना माने तो उनकी भावना ही किया करे (कि) यह होओ और बढ़ो। आहाहा! आस्रवरहित चैतन्यस्वरूप है, उसकी दृष्टि नहीं। उसकी दृष्टि नहीं तो उसकी भावना इसे नहीं होती। आहाहा! राग से पृथक् पड़ा ऐसा तत्त्व, उसका भान होने पर धर्मी को धर्म की भावना होती है। शुद्ध परिणाम की भावना होती है। आहाहा! अज्ञानी को शुभभाव ही दिखता है, आत्मा दिखता नहीं। इसलिए शुभभाव को अपना मानकर उसकी वृद्धि करने की भावना होती है, उसकी भावना भाता है। आहाहा!

इसलिए कर्म.. आते हैं। लो! राग-द्वेष और मोह को अपना मानकर भावना भावे, इसलिए नये कर्म आते हैं। **उससे नोकर्म होता है;..** कर्म से नोकर्म—शरीर मिलता है। कर्म से कहीं आत्मा मिलेगा? आहाहा! कर्म से शरीर मिलता है। आहाहा! **और उससे संसार उत्पन्न होता है।** शरीर मिले, उससे संसार उत्पन्न होता है। पाँच इन्द्रिय के विषय और यह सब शरीर है, इनकी ओर का झुकाव जाने पर सब भाव विकारमय, संसारमय भाव होते हैं। आहाहा! है? **उससे संसार उत्पन्न होता है।** यहाँ कर्म को संसार का कारण कहा। एक ओर कर्म जड़ है; संसार, वह मिथ्यात्व-अज्ञान परिणाम है, परन्तु यहाँ पारस्परिक निमित्त-निमित्त सम्बन्ध सिद्ध किया है। आहाहा!

आस्रव का अभिप्राय है, वह आस्रव को भाता है; इसलिए उसे नये कर्म बँधते हैं। कर्म बँधते हैं, वह नोकर्म-शरीर का कारण है और शरीर, वह संसार का कारण है। एक ओर ऐसा कहे कि मिथ्यात्व ही संसार का कारण है। आता है या नहीं? आ गया। मिथ्यात्व, वही आस्रव है और वही संसार का कारण है। आहाहा!

किन्तु जब (वह आत्मा),.. यह तो संसार का क्रम पड़ा। जो आत्मा और दूसरी चीज़ कर्म, उसके साथ एकत्वबुद्धि से उत्पन्न होनेवाले मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय के अध्यवसाय, इनसे राग-द्वेष-मोह होता है, वह आस्रव का कारण है और वह आस्रव, कर्म का कारण है; कर्म, शरीर का कारण है; शरीर संसार का कारण है। आहाहा! कहो, यहाँ शरीर, वह संसार का कारण है। एक जगह ऐसा कहते हैं कि कर्म को और आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं है। तेरी पर्याय में तुझसे मिथ्यात्व होता है, वह संसार है। यहाँ तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बतलाना है। ऐसा अनादि से चलता आया है, ऐसा। आहाहा!

किन्तु.. इस प्रकार होता है। अब संवर करने का क्रम बताते हैं। **जब (वह आत्मा), आत्मा और कर्म के भेदविज्ञान के द्वारा..** अब संवर करने की विधि कहते हैं। पहले आस्रव की पद्धति थी। आहाहा! पूरे दिन धन्धा करे, (पश्चात्) दो घड़ी मन्दिर जाए, उपाश्रय जाकर बैठे, इसलिए मानो धर्म हो गया, ऐसा। कुछ अपन ने धर्म किया। वह मिथ्यात्व को पोषण करता है। शुभभाव होवे, उसे धर्म मानता है, वह मिथ्यात्व को पोषण करता है। आहाहा! इस प्रकार अनादि से संसार प्रवर्तता है, ऐसा कहते हैं। भटकता है, इसका कारण यह—आत्मा और कर्म की एकत्वबुद्धि के कारण राग-द्वेष-मोह; उनके कारण से कर्म; उनके कारण से शरीर; उसके कारण से संसार।

किन्तु जब (वह आत्मा), आत्मा और कर्म के भेदविज्ञान के द्वारा.. ऐसा कहा है। ऐसा नहीं कहा कि जब इस आत्मा को कर्म का जोर घटे, कर्म बलवानपने में से (घटे), 'कच्छवि धम्मो बलियो, कम्मो बलियो' ऐसा नहीं। जड़ की बात नहीं है। भावकर्म का जोर हो, पुरुषार्थ की विपरीतता का, (जोर हो), तब संसार है। यहाँ कहते हैं, **आत्मा और कर्म के भेदविज्ञान के द्वारा..** उसमें आत्मा और कर्म के एकपने का अध्यास (कहा था)। आहाहा! आत्मा और कर्म का भेदविज्ञान। कर्म और होनेवाले राग -द्वेष शुभाशुभपरिणाम से भिन्न मेरा आत्मा है—ऐसा जब जाने और माने.. आहाहा! तब तो

इसकी धर्म की शुरुआत होती है। आहाहा! ऐसी कठिन बातें हैं। उसमें ऐसा था, आत्मा और कर्म का एकत्व का अध्यवसाय। यहाँ आत्मा और कर्म के भेदविज्ञान द्वारा (ऐसा है)।

शुद्ध चैतन्य चमत्कारमात्र आत्मा को.. अनुभव करता है। आहाहा! वह राग-द्वेष-मोह को अनुभव करता है। यह शुद्ध चैतन्य चमत्कारमात्र (अनुभव करता है)। आहाहा! (जिस) अल्प क्षेत्र में रहा, तो भी अनन्त अपार अनन्त काल को भी जाने, ऐसी चैतन्य चमत्कार चीज़ है। आहाहा! देहप्रमाण होने पर भी, देह में रहा दिखायी दे, तथापि देह में रहा नहीं। है आत्मा में। परन्तु उसका ऐसा चमत्कार है कि स्वक्षेत्र में रहा होने पर भी, अनन्त परक्षेत्र को और अनन्त पर काल को एक समय में जाने, ऐसी ताकत है। आहाहा! ऐसी एक समय की ताकत, ऐसी अनन्त समय की ताकत एक गुण की, ऐसे अनन्त गुण का रूप एक आत्मा है। आहाहा! इसलिए पहले आ गया था न? '**निजमहिमरतानां**' आ गया था न इसके पहले? १२८ (कलश) '**निजमहिमरतानां**' कलश आया। अपनी महिमा लगनी चाहिए। आहाहा!

जहाँ-जहाँ अपनी महिमा न लगे, वहाँ-वहाँ परवस्तु की महिमा और अधिकता भासित होती है। शब्द, रूप, रस, गन्ध, पैसा, लक्ष्मी (आदि की महिमा भासित होती है)। आहाहा! इकलौता लड़का हो, पाँच-दस करोड़ रुपये हों, दस-पच्चीस लाख खर्च करना हो और लोग इकट्ठे हों... आहाहा! देखो! इसका उत्साह। इसका ज़हर का उत्साह। आहाहा! कौन तेरा है? और तू कौन है? कौन तेरा है? और तू कौन है? आहाहा! भगवान आत्मा तो चैतन्यमूर्ति वीतरागस्वरूप प्रभु है। वह स्वयं राग से भिन्न पड़कर भेदज्ञान करे, जैसा स्वरूप है, वैसा जाने। वैसा स्वरूप है, उससे विपरीत मानता था। राग को, पुण्य को और कर्म को अपना मानता था। यह धर्मी जीव... आहाहा! धर्म ऐसे होगा, इस क्रम से (होगा), ऐसा कहते हैं।

धर्म इस क्रम से होगा। इस क्रम से अर्थात्? पहले आत्मा और कर्म के भेदविज्ञान द्वारा शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मा को पहले अनुभव करे। लो! यहाँ से शुरुआत की है। अनादि से भटकता है, वह कारण बतलाया। अब कहते हैं कि यह छूटने का कारण? कि ये सब राग और कर्म और समस्त चीज़ों से भेदज्ञान करना। आहाहा! **भेदविज्ञान के द्वारा शुद्ध चैतन्य चमत्कारमात्र..** अकेला चमत्कार चैतन्य प्रभु! ज्ञान से भरपूर, आनन्द से भरपूर,

शान्ति से भरपूर, पूर्ण स्वरूप का चमत्कार जिसका, एक क्षण में ज्ञान में जिसे सब ज्ञात हो, एक क्षण में जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव आवे, ऐसा चैतन्य चमत्कार! आहाहा!

शुद्ध चैतन्यमात्र, **चैतन्य चमत्कारमात्र आत्मा को उपलब्ध करता है..** लो! चैतन्यमात्र, ऐसा नहीं लिया। चैतन्य चमत्कारमात्र! आहाहा! वह पर को स्पर्श किये बिना भी जानने की शक्ति प्रगट करता है, वह चैतन्य चमत्कार है। पर चीज़ की अस्ति है, इसलिए पर को जानने की सामर्थ्य खुलती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! स्वयं छोटे क्षेत्र में रहा हुआ, परक्षेत्र-द्रव्य-काल को स्पर्श नहीं करता, तथापि अपने स्वभाव में राग से भिन्न पड़कर, भेदज्ञान से सबको एक समय में जानता है, ऐसा यह चैतन्य चमत्कार आत्मा है। आहाहा! यह करना है। आहाहा! परन्तु यह न हो तो पहले क्या करना? पहला तो अनादि से किया, वह बतलाया। पहला अनादि से किया। शुभयोग, अशुभयोग जिसके मूल राग-द्वेष-मोह हैं, उन्हें सेवन किया। यह पहले सेवन किया। अब पश्चात् यह करना। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : देव-शास्त्र-गुरु निमित्त हैं, उनसे भिन्न करना। पहले से भिन्न करना। यहाँ तो पहले से लिया। जैसे १७वीं गाथा में आया था न? १७वीं गाथा। प्रथम आत्मा को जानना। कोई यह विधि और अमुक व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना और फिर, ऐसी बात ली नहीं। एकदम धड़ाका बन्द!

तू कौन है? कहाँ है? कितना है? तेरी अस्ति में तो दूसरे की अस्ति ज्ञात होती है। दूसरे की-जड़ की अस्ति तो तेरी अस्ति से-ज्ञान से ज्ञात होती है। आहाहा! उस जड़ को तो खबर भी नहीं। आहाहा! इतनी सब जड़ की विशाल दशा, उन सबको भगवान अपने में रहकर स्वतः पर की सहायता बिना जानता है। यह चैतन्य चमत्कार नहीं? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। अन्तर का आत्मअभ्यास ही अभी बहुत घट गया है। व्रत करना और तप करना और यात्रा करनी, ऐसा सब (चला है)। बसें भर-भरकर (यात्रा करनी)। एक बार दो सौ बसें वहाँ कहीं आयी थी। वे साधु थे वहाँ। भव्यसागर! जालना? जालना में। दो सौ बसें। स्थानकवासी के आनन्द ऋषि थे। उसमें थे। आवे, पश्चात् यहाँ आवे। दिगम्बर के दर्शन करने आवे। एक साथ दो सौ बसें! ओहो! इससे फिर ऐसा लगे ओहो! कितने पैसे खर्च किये! उसका यह प्रमुख है, यह संघ का नायक है।

मुमुक्षु : सब अभिमान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि हम करते हैं, हम सब करते हैं, यह सब करते हैं। अभिमान तो ठीक परन्तु अन्दर शुभभाव होता है, वह दुःखरूप है।

मुमुक्षु : धर्म का कारण होगा, ऐसा मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल धर्म का कारण नहीं। आहाहा! धमाधम चली, कुछ बोल है न? 'धाम धूमे धमाधम चली, ज्ञान मार्ग रहा दूर।' आहाहा! धमाधम, अरे..! पचास हजार लोग इकट्ठे हुए और इतने लाख खर्च किये, भगवान की प्रतिष्ठा की, भगवान के बोल बुलवाये, जय नारायण की (आवाज से) गगन गूँज उठा, जय भगवान, ऐसा गगन गुँजायमान हुआ, इतने सब बोलनेवाले। उसमें धर्म कहाँ आया? आहाहा! कठिन बात है, भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि पर से निराला पहले जान, तब तो तुझे पहले अपनी सत्ता की भिन्नता की श्रद्धा होगी। आहाहा! ऐसा कहा न? **भेदविज्ञान के द्वारा शुद्ध चैतन्य चमत्कारमात्र..** चैतन्य चमत्कारमात्र क्यों लिया? बिल्कुल राग का भी अंश नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु, उसे अनुभव करे। ऐसे आत्मा को प्राप्त करता है। जो राग को, योग को प्राप्त किया है, राग और योग को प्राप्त किया है, वह अब गुलाँट खाकर आत्मा को प्राप्त करता है। आहाहा! सूक्ष्म है, परन्तु वस्तु यह है। जीवन चला जाता है। अभी नहीं, अभी नहीं, अभी नहीं। अभी नहीं, फिर अभी नहीं अर्थात् अभी नहीं (हो जाएगा)। फिर करूँगा, फिर करूँगा, फिर करूँगा। आहाहा!

आत्मा और कर्म के भेदविज्ञान के द्वारा शुद्ध चैतन्य चमत्कारमात्र.. आत्मा को विशेषण दिये। आत्मा कैसा? कि शुद्ध चैतन्य चमत्कारमात्र, ऐसा। आत्मा को और कर्म को भेदविज्ञान से जानना, (ऐसा कहा) परन्तु वह चैतन्य है कैसा? आहाहा! **शुद्ध चैतन्य चमत्कारमात्र आत्मा..** उसे उपलब्ध करे, प्राप्त करे, अनुभव करे, उसे प्राप्त करे। जो राग को अपना मानकर शुभराग को प्राप्त करता था और अपने में खतोनी करता था, वह यह आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है, इसे अनुभव करे और इसे अपने रूप माने। आहाहा! यह संवर होने की विधि है। अभी तो संवर (अर्थात्) थोड़ी देर बैठ जाए, छोटी उम्र के लड़कों

को (लेकर बैठ जाए, तो हो गया संवर।) जाओ! खा-पीकर आवे परन्तु चार-छह लड़के बैठे, सामायिक करो (तो) संवर होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : छह काय के जीव की रक्षा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं कौन है? उसकी रक्षा करता नहीं। आहाहा! राग को अपना मानना, पर को अपना मानना, यह तो अपनी हिंसा है। आहाहा!

यहाँ तो पहले आत्मा और कर्म के भेदविज्ञान द्वारा। यहाँ तो पहली बात ली है। पहले ऐसा करना, और वैसा करना लिया नहीं। ऐई! पहले पढ़ना, पहले सुनना, पहले देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करना, (ऐसा नहीं कहा)। वह पहले भले होवे परन्तु इस वस्तु के स्वरूप में वह कुछ मददगार नहीं है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र को माने, सुने, समझे परन्तु वह कहीं भेदज्ञान में मदद करे, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! वीतराग का यह पुकार है। वीतराग ऐसा कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखने से प्रभु! तुझे राग होगा। तेरे हिसाब से मैं परद्रव्य हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : तेरे हिसाब से अजीव हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अजीव है, यह जीव है, वे यह जीव नहीं और यह जीव है, वे यह जीव नहीं। आहाहा! अद्रव्य है, इसकी अपेक्षा सब अद्रव्य है, अक्षेत्र है, अकाल है, अभाव है। आहाहा! सम्मेदशिखर और भगवान का समवसरण आत्मा की अपेक्षा से अक्षेत्र है। इसका क्षेत्र तो स्व-असंख्य प्रदेशी यह इसका क्षेत्र है। आहाहा! लोग शत्रुंजय की यात्रा बहुत करते हैं। पूर्व में ९९वें बार ऋषभदेव यहाँ आये थे, ऐसा कहते हैं। उसमें क्या हुआ? ९९ वें यात्राएँ की। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! परन्तु वह तो परलक्ष्यी भाव है। उस भाव से तो भिन्न पड़ना है। जिससे भिन्न पड़ना है, उससे मदद कैसे मिलेगी? आहाहा! क्योंकि जिससे भिन्न पड़ना है, वह चीज़ तुझमें तो नहीं है। अब तुझे उपलब्ध करना होवे तो किस प्रकार (करना)? भेदविज्ञान से। राग और पर के भेदविज्ञान से प्राप्त हो, ऐसा है। आहाहा! यह उसकी पद्धति है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले देशना न सुने तो भेदविज्ञान किस प्रकार करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदविज्ञान (करने की) इसमें ताकत है। इसकी ताकत ही इतनी है कि राग से भिन्न पड़ने की शक्ति इसमें स्वयं में है। पर की अपेक्षा रखे बिना भेदज्ञान होने की शक्ति इसमें है। आहाहा! निरपेक्ष तत्त्व है, भगवान। आहाहा! निरपेक्ष—जिसे किसी की अपेक्षा नहीं। व्यवहार की अपेक्षा, पर की अपेक्षा (नहीं, ऐसा) निरपेक्ष तत्त्व है। आया नहीं? नियमसार तीसरी गाथा में। परम निरपेक्ष। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वे परम निरपेक्ष हैं। जिसे भगवान की भी अपेक्षा नहीं, उनकी वाणी की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा जो आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों निरपेक्ष हैं। उसे निमित्त की तो अपेक्षा नहीं, परन्तु भेद की अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को कठिन लगता है।

मुमुक्षु : (निरपेक्ष अभेद) तो कठिन होये न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति अनन्त काल की (ऐसी है)। अनन्त काल...! आहाहा! दस्त न उतरे तो ऐनिमा देते हैं, नहीं? उससे बाहर ढ़ेर हो जाता है। यह ऐनिमा है। स्वरूप में से विकारादि जितने सब कारण हैं, वे सब भेदज्ञान से भिन्न पड़ जाते हैं। आहाहा! इसमें ऐसा नहीं कहा कि देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति करना, पहले विनय करना, बहुमान करना, पश्चात् (भेदज्ञान होगा)। पहला ही बहुमान प्रभु! तेरा कर। पश्चात् विकल्प आयेगा, तो पर का बहुमान होगा। तू तेरा बहुमान (कर)। चैतन्य चमत्कार महिमावन्त वस्तु है। जिसे धर्म की पर्याय प्रगट करनी (होवे), उसे भेदज्ञान से होती है। इसलिए जितने पर हैं, उनकी अपेक्षा छोड़कर, उनका आश्रय छोड़कर, इसका नाम भेदज्ञान। कितने का आश्रय छोड़े और कितने का आश्रय लेकर हो, ऐसा है? आहाहा! सबका आश्रय छोड़े। एकाकार आत्मा भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : जो जानता अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उन्हें नहीं जानता। यह निमित्त से कहा है। यह मन से जान लेने का ऐसा कहा है, आत्मा से नहीं। पश्चात् उसे छोड़कर अन्दर में जाए। अन्दर में जाकर भी उन्हें तो छोड़ता है और अपनी पर्याय को भी गुण में-द्रव्य में मिलाता है, गुण को द्रव्य में मिलावे, तब होता है। आहाहा! अब ऐसी बातें।

अनुभव करता है.. कर्म और आत्मा के भिन्नपने द्वारा-भेदज्ञान द्वारा। आहाहा!

शुद्ध चैतन्य चमत्कारमात्र आत्मा को उपलब्ध करता है.. प्राप्त (करता है।) अर्थात् जो राग को प्राप्त करता था, राग मेरा है, ऐसा जो प्राप्त करता था, वह भेदज्ञान से आत्मा को प्राप्त किया। आहाहा! जो आत्मा की ओर दृष्टि नहीं थी, तब राग को प्राप्त करता था, पुण्य को प्राप्त करता था, पाप को प्राप्त करता था। आहाहा! समुच्चय बात नहीं आ गयी विगत दिन? कि आत्मा अपनी पर्याय को पाता है, प्राप्त करता है, पहुँचता है, चाहे तो विकारी हो या अविकारी। यह पहले आ गया। यहाँ तो अब भेदज्ञान करने की बात है। उस विकारी पर्याय को पहुँचता है तो आत्मा, वह कहीं कर्म के कारण नहीं है। आहाहा! विकारी मिथ्यात्वभाव को भी आत्मा पहुँचता है, आत्मा प्राप्त करता है, आत्मा उसे प्राप्त करता है। आहाहा! अब उससे भेदज्ञान कर। आहाहा! ऐसी गहरी बातें हैं।

तब मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति और योगस्वरूप अध्यवसान, जो कि आस्रव-भाव के कारण हैं, उनका अभाव होता है;.. लो! आहाहा! शुद्ध चैतन्य चमत्कारमात्र वस्तु को अनुभव करता है अर्थात् प्राप्त करता है, तब उसे जो यह (राग) प्राप्त था, वह भाव छूट जाता है। मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति और योगस्वरूप एकत्व बुद्धि। **जो कि आस्रवभाव के कारण हैं, उनका अभाव होता है;..** लो! आहाहा! यह कहीं सोनगढ़ की टीका नहीं है। यह तो पहले से शास्त्र चले आते हैं। दो हजार वर्ष से तो यह गाथा, मूल पाठ चलता है। हजार वर्ष से तो टीका चलती है। आहाहा! यह तो कहाँ का कहाँ होगा तब? टीका हजार वर्ष पहले हुई थी। (तब तो) कहाँ का कहाँ अवतार में होगा और भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने दो हजार वर्ष पहले (शास्त्र) रचे, तब तो कोई कहाँ होगा? आहाहा! उसमें आकर ऐसा योग हुआ है, कहते हैं। अब इस योग में भी यह कर तो तेरा कल्याण है। आहाहा!

(ज्ञान और राग) पृथक् पड़ सकते हैं, इसलिए पृथक् हैं। पृथक् पड़ सकते हैं। एक होवे तो पृथक् किस प्रकार (पड़ें)? ज्ञान और आत्मा को पृथक् कर डालो, तो किस प्रकार पृथक् होंगे? अतद्भावरूप से पृथक्, वे पृथक् अन्दर, परन्तु प्रदेश भिन्न नहीं; इसलिए अभेद है। अतद्भावरूप से तो वह भिन्न। द्रव्य, वह भाव नहीं और भाव, वह द्रव्य नहीं, यह। परन्तु उस पृथक्त्व का अन्यत्व, वह इसमें नहीं है। अतद्भाव का अन्यत्व इसमें है। आहाहा! यह दोपहर को आया था न? आहाहा!

आस्रवभाव के कारण हैं, उनका अभाव होता है; अध्यवसानों का अभाव होने पर.. (अर्थात्) एकत्वबुद्धि का अभाव होने पर। **रागद्वेषमोहरूप आस्रवभाव का अभाव होता है;..** आहाहा! जिनसे भिन्न पड़ा, इसलिए अब उसकी भावना रही नहीं। आहाहा! उसके भाव का अभाव होता है। **आस्रवभाव का अभाव होने पर कर्म का अभाव होता है;..** लो! नये आवरण बन्द हो गये तो अब कर्म नहीं आते। **कर्म का अभाव होने पर नोकर्म का अभाव होता है;..** यह क्रम किया, क्रम।

यहाँ तो पहले समय जहाँ अन्दर सबसे भिन्न पड़ा, परन्तु जब तक थोड़ी अस्थिरता है, तब तक आस्रव आते हैं और कर्म होते हैं, शरीर होता है और शरीर से यह संसार चलता है। पाँच इन्द्रिय के विषयों से (चलता है) क्योंकि इसका लक्ष्य बाहर है। कर्म से शरीर मिलेगा और शरीर का लक्ष्य इसे रहेगा, इसलिए पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर लक्ष्य रहेगा। भगवान अन्दर है, वह तो छूट गया, लक्ष्य में नहीं। भेद किया नहीं, लक्ष्य में नहीं। आहाहा! और जिसने भेद किया, उसे शरीर का लक्ष्य छूटा और उसमें विषयों का लक्ष्य है, वह भी छूट गया। उसकी ओर का आश्रय लेना और रुचि (होना), वह छूट गयी। आहाहा!

नोकर्म का अभाव होता है; और नोकर्म का अभाव होने पर संसार का अभाव होता है। इस शरीर का अभाव होने पर संसार का अभाव होता है। अपेक्षा से (कथन है)। बाकी एक जगह तो (ऐसा कहा कि) मिथ्यात्व, वह आस्रव है। मिथ्यात्व, वह संसार है। शरीर-बरीर संसार नहीं है। किस अपेक्षा से कथन है? यहाँ भी क्रम कहना है। राग की एकत्वबुद्धि में राग-द्वेष मोह होंगे, उनके कारण आस्रव और उसके कारण कर्म होंगे, कर्म के कारण शरीर होगा और शरीर के कारण भटकने का संसार होगा। ऐसा। समझ में आया? दूसरी जगह दूसरा कहते हैं, परन्तु दूसरी अपेक्षा से कहते हैं। वहाँ तो ऐसा ही कहे कि मिथ्यात्व, वह संसार है। राग की एकत्वबुद्धि, वह मिथ्यात्व, वह संसार है; दूसरा कोई संसार नहीं है। अव्रतादि के परिणाम हैं, वे सब अल्प हैं। स्थिति, रस अल्प है और उनका जोर अल्प है। उनकी गिनती नहीं गिनी। आहाहा!

शरीर से संसार प्राप्त होता है न, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। कर्म से शरीर मिलता है और शरीर से संसार प्राप्त होता है। क्योंकि शरीर के ऊपर लक्ष्य है, उसे तो सब पाँच इन्द्रिय के

विषयों की ओर लक्ष्य है, पश्चात् भले शुभ की ओर हो या अशुभ की ओर हो परन्तु वह सब संसार है। आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर से तो धर्म की शुरुआत होती है, ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सीधी शुरुआत ऐसे ही होती है। आहाहा! शुभभाव से भगवान को सुने और फिर भगवान ने कहा, इसलिए (शुद्ध होना), ऐसी भी यहाँ गिनती नहीं है। यहाँ तो तू भगवान निरपेक्ष तत्त्व है, प्रभु अन्दर। आहाहा! तेरी महिमा का पार नहीं है, तेरे माहात्म्य का पार नहीं है! तेरी शक्ति और गुणों का गहनपना, गम्भीरपना भगवान भी वाणी द्वारा पूरा नहीं कह सकते। आहाहा! अनन्त गुण इतने हैं कि एक समय में एक गुण कहे तो अनन्त समय में इसके गुणों का पार नहीं आता। एक गुण एक समय में कहे तो भी तीन काल के समय हैं, उससे भी गुण तो अनन्त गुणे हैं। आहाहा! यह क्या कहा?

चैतन्य चमत्कार प्रभु, इतने पवित्र गुण से भरपूर है कि जिसके अनन्त गुणों को केवली भी एक शब्द में एक गुण कहे, दूसरे समय (दूसरा गुण कहे ऐसे) तीन काल हो तो उस गुण का पूरा नहीं पड़ता। आहाहा! तीन काल के समय से भी गुण तो अनन्तगुने हैं तो फिर एक समय में एक गुण कहे, परन्तु एक समय में अनन्त गुण कहे, अनन्त कहे, ऐसे तीन काल के समय कहे तो भी वे गुण पूरे नहीं पड़ते। आहाहा! क्योंकि तीन काल के समय से तो आकाश के प्रदेश अनन्तगुने हैं और उनसे अनन्तगुने गुण हैं। आहाहा! अब इसमें कहाँ आया तुम्हारे पैसे का? दस लाख और बीस लाख और अमुक लाख। आहाहा! यह तो अनन्त लाख, अनन्त करोड़। आत्मा में अनन्त क्रोड़ाक्रोड़ी गुण हैं। आहाहा! अनन्त क्रोड़ाक्रोड़ी! आहाहा! ऐसा शुद्ध चैतन्य चमत्कार! एक गुण। ...एक समय में अनन्त गुण को कहे, तो भी तीन काल के समय में उन गुणों का पूरा नहीं पड़ता। उन गुण की संख्या पूरी नहीं पड़ती। आहाहा! गजब बात है! एक समय में अनन्त गुण बोले, दूसरे समय में अनन्त, तीसरे समय अनन्त तो तीन काल के समय से तो आकाश के प्रदेश अनन्तगुणे और उससे अनन्तगुणे गुण हैं। इसलिए गुण तो किस प्रकार पार पड़े? आहाहा! ऐसा चैतन्यस्वरूप भगवान है, उसे राग से भिन्न करके आत्मा को प्राप्त करना कि जिससे उसे संसार होगा नहीं। आत्मा प्राप्त होने पर आस्रव नहीं होगा; आस्रव नहीं होगा, इसलिए कर्म नहीं होगा; कर्म नहीं होगा, इसलिए नोकर्म नहीं होगा; नोकर्म नहीं होगा, इसलिए

संसार नहीं होगा। आहाहा! पैसे का, बाहर की इज्जत का पावर अन्दर चढ़ गया हो न, वह नीचे उतरे। आहाहा! वह चालीस करोड़ और वह पचास करोड़ और वह दो अरब चालीस करोड़... आहाहा! सबका पानी उतर गया। आहाहा!

इस प्रकार.. है? **नोकर्म का अभाव होता है; और नोकर्म का अभाव होने पर संसार का अभाव होता है। इस प्रकार यह संवर का क्रम है।** लो! संवर का ऐसा क्रम है। पहले भेदविज्ञान करना, यहाँ से शुरु होता है। पहले ये करना, ऐसे शुरुआत होती नहीं। भक्ति करना, (वहाँ से शुरुआत नहीं कही)। संवर होने का क्रम यह है। आहाहा! पहले जरा भक्ति करना, पढ़ना, निवृत्ति लेकर, अशुभ से रुककर शुभभाव में आना, पश्चात् शुभ में से हटना, यह बात यहाँ नहीं की है। आहाहा! संवर तो आस्रव के अभाव से होगा न! उसमें आस्रव इतना करे तो संवर होगा, ऐसा कहाँ आया? आहाहा! पहले से भेदज्ञान करना। आहाहा! इसकी शुरुआत ही भगवान आत्मा और दूसरी चीज़ दो है, दूसरी भले अनन्त हो, परन्तु दोनों की एकता है, उसे तोड़ना ही संवर के क्रम में पहली पद्धति है। ऐसा है। भावार्थ कहा जाएगा? (**श्रोताः** प्रमाण वचन गुरुदेव!)